BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed Open Access Journal
issn : 3048-6971
Vol. 3, Issue 1, January-March 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/

19वीं और 20वीं सदी में भारतीय शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन और उसकी सामाजिक प्रभावशीलता

Dr. Md. Asalam
Department History
Jai Prakash University, Chapra

भूमिका (Introduction)

भारतीय शिक्षा प्रणाली में 19वीं और 20वीं सदी के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिन्होंने न केवल शिक्षा के स्वरूप को बदला, बल्कि समाज की संरचना और विकास पर भी गहरा प्रभाव डाला। प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा का एक सुदृढ़ तंत्र मौजूद था, जिसमें गुरुकुल, मदरसे और पाठशालाएँ प्रमुख थीं। ये संस्थाएँ धार्मिक, नैतिक और व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य करती थीं। किंतु 19वीं सदी में ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ ही शिक्षा प्रणाली में एक नया मोड़ आया। अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक और आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप आधुनिक शिक्षा प्रणाली की नींव रखी, जिसमें अंग्रेजी भाषा, विज्ञान, गणित और अन्य पश्चिमी विषयों को महत्व दिया गया।[1]

इस बदलाव का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासन के लिए एक शिक्षित प्रशासनिक वर्ग तैयार करना था, लेकिन इसके दूरगामी प्रभाव भारतीय समाज के लिए क्रांतिकारी साबित हुए। अंग्रेजों द्वारा स्थापित विद्यालयों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों ने भारतीय समाज में एक नया बौद्धिक वर्ग तैयार किया, जिसने स्वतंत्रता आंदोलन और सामाजिक सुधारों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 19वीं सदी के अंत तक भारतीय समाज में शिक्षा का प्रसार होने लगा, जिससे महिलाओं की शिक्षा, जाति प्रथा में परिवर्तन और राष्ट्रीय जागरूकता को बढ़ावा मिला। 20वीं सदी में, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान शिक्षा का महत्व और अधिक बढ़ गया।[2] महात्मा गांधी, रविंद्रनाथ टैगोर और अन्य समाज सुधारकों ने शिक्षा को भारतीयता और स्वावलंबन से जोड़कर देखा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारत सरकार ने शिक्षा को सुलभ और सर्वजन हिताय बनाने के लिए कई महत्वपूर्ण नीतियाँ लागू कीं, जिनमें 1968 और 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति उल्लेखनीय हैं। संविधान में शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता दी गई, जिससे समाज के प्रत्येक वर्ग को शिक्षित करने की दिशा में ठोस कदम उठाए गए।

इस शोध का उद्देश्य 19वीं और 20वीं सदी में भारतीय शिक्षा प्रणाली में हुए परिवर्तनों का विश्लेषण करना और उनके सामाजिक प्रभावों को समझना है। यह अध्ययन शिक्षा के विकास और समाज पर उसके व्यापक प्रभावों की पड़ताल करेगा, जिससे हमें यह पता चलेगा कि इन परिवर्तनों ने भारत को किस दिशा में आगे बढ़ाया।

मुख्य शब्द :–

19वीं सदी में भारतीय शिक्षा प्रणाली (Education System in 19th Century India)

19वीं सदी में भारतीय शिक्षा प्रणाली परंपरागत और औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली के बीच संक्रमण के दौर से गुजरी। इस अवधि के प्रारंभ में शिक्षा मुख्यतः गुरुकुल, मदरसों और पाठशालाओं के माध्यम से दी जाती थी। गुरुकुल प्रणाली में विद्यार्थियों को आश्रमों में रहकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी, जिसमें धार्मिक ग्रंथों, दर्शन, गणित, आयुर्वेद और ज्योतिष का अध्ययन प्रमुख था। यह प्रणाली मुख्यतः ब्राह्मणों और उच्च जाति के लोगों तक सीमित थी, जिससे समाज में शिक्षा का व्यापक प्रसार नहीं हो सका। इसी तरह, मुस्लिम समाज में मदरसा प्रणाली प्रचलित थी, जहाँ इस्लामी शिक्षा, अरबी और फारसी भाषा, तथा धार्मिक ज्ञान दिया जाता था। इन पारंपरिक शिक्षण प्रणालियों में नैतिकता और जीवन मूल्यों पर विशेष ध्यान दिया जाता था, लेकिन ये वैज्ञानिक और आधुनिक विषयों में पिछड़ी हुई थीं।[3]

@2025 Bihar Shodh Samaagam

19वीं सदी के मध्य तक भारत में अंग्रेजों का शासन सुदृढ़ हो चुका था, और उन्होंने प्रशासनिक आवश्यकताओं के अनुरूप एक नई शिक्षा प्रणाली की नींव रखी। 1835 में लॉर्ड मैकॉले ने 'मैकॉले मिनट' प्रस्तुत किया, जिसने भारतीय शिक्षा प्रणाली को पूरी तरह से बदल दिया। इस मिनट का उद्देश्य अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना और भारतीयों को यूरोपीय विज्ञान, साहित्य और प्रशासनिक शिक्षा प्रदान करना था। मैकॉले ने यह तर्क दिया कि भारतीय भाषाओं में उच्च स्तर की वैज्ञानिक और साहित्यिक सामग्री उपलब्ध नहीं है, इसलिए अंग्रेजी शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप पारंपरिक संस्कृत और फारसी आधारित शिक्षा प्रणाली कमजोर पड़ने लगी और अंग्रेजी शिक्षा को प्राथमिकता दी गई।मैकॉले की शिक्षा नीति के कारण भारत में नए विद्यालय, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्थापित किए गए, जिनमें 1857 में स्थापित कोलकाता, मद्रास और बॉम्बे विश्वविद्यालय प्रमुख थे। हालांकि, इस शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य भारतीयों को ब्रिटिश प्रशासन में नौकरियों के लिए तैयार करना था, न कि समाज में समग्र शिक्षा का प्रसार करना।[4] अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से एक नया शिक्षित वर्ग उभरा, जिसने सामाजिक सुधार आंदोलनों और स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परंतु, यह शिक्षा प्रणाली ग्रामीण क्षेत्रों और निम्न वर्गों तक प्रभावी रूप से नहीं पहुँच पाई, जिससे समाज में शैक्षिक असमानता बनी रही।

19वीं सदी में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार ने भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव डाला। ब्रिटिश सरकार द्वारा शुरू की गई शिक्षा नीतियों के परिणामस्वरूप भारत में नए स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्थापित हुए, जिनमें अंग्रेजी भाषा को प्रमुख माध्यम बनाया गया। इससे भारतीयों को आधुनिक विज्ञान, गणित, इतिहास और प्रशासनिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। अंग्रेजी शिक्षा ने एक नए शिक्षित वर्ग को जन्म दिया, जिसने भारतीय समाज में बौद्धिक जागरूकता और सामाजिक सुधार आंदोलनों को बढ़ावा दिया। अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों को न केवल पश्चिमी विज्ञान और तकनीक से परिचित कराया, बल्कि उन्हें सामाजिक और राजनीतिक रूप से भी सशक्त बनाया। इससे महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा मिला, जातिवाद और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आवाज उठी, और भारतीय समाज में आधुनिक विचारधाराएँ प्रवेश करने लगीं।[5] इसके प्रभाव से भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई, जिसने आगे चलकर स्वतंत्रता संग्राम की नींव रखी। हालांकि, अंग्रेजी शिक्षा का एक नकारात्मक पक्ष यह भी था कि यह मुख्यतः शहरी क्षेत्रों और उच्च वर्ग तक सीमित रही, जिससे ग्रामीण और निम्न वर्गों को इस शिक्षा का लाभ नहीं मिल सका।

19वीं सदी में कई समाज सुधारकों ने शिक्षा के महत्व को समझते हुए सामाजिक सुधारों की दिशा में कार्य किया। राजा राममोहन राय ने आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए ब्रिटिश सरकार के साथ मिलकर काम किया और 1817 में हिंदू कॉलेज की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित किया और सामाजिक कुरीतियों जैसे सती प्रथा के खिलाफ संघर्ष किया। इसी तरह, ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने बालिका शिक्षा के विकास के लिए अथक प्रयास किए। उन्होंने 1850 के दशक में बंगाल में कई महिला विद्यालयों की स्थापना की और विधवा पुनर्विवाह कानून लागू करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके प्रयासों से समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी और महिलाओं को शिक्षित करने की दिशा में सकारात्मक बदलाव हुए। इन समाज सुधारकों के प्रयासों से शिक्षा भारतीय समाज में बदलाव का एक प्रमुख साधन बनी और आधुनिक भारत की नींव रखी गई।[6]

20वीं सदी में भारतीय शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन (Changes in the 20th Century Education System)

20वीं सदी में भारतीय शिक्षा प्रणाली में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जो देश के सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य से सीधे जुड़े थे। इस अवधि में स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन ने शिक्षा को ब्रिटिश प्रभाव से मुक्त करने और भारतीय मूल्यों पर आधारित बनाने का प्रयास किया। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने महसूस किया कि ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली भारतीयों को अपने इतिहास, संस्कृति और परंपराओं से दूर कर रही है। इसी कारण, 20वीं सदी के प्रारंभ में राष्ट्रीय शिक्षा

आंदोलन ने जोर पकड़ा, जिसका उद्देश्य भारतीय दृष्टिकोण से शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन करना था। स्वदेशी आंदोलन के दौरान, 1905 में बंगाल के विभाजन के विरोध में राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों की स्थापना की गई, जिनमें बंगाल नेशनल कॉलेज (जहाँ खुद सुभाष चंद्र बोस ने अध्ययन किया) और काशी विद्यापीठ जैसे संस्थान प्रमुख थे।[7] इन संस्थानों का उद्देश्य ब्रिटिश शासन से अलग एक स्वतंत्र और स्वदेशी शिक्षा प्रणाली विकसित करना था, जो भारतीय मूल्यों और परंपराओं पर आधारित हो। इस दौरान, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा को भी बढ़ावा दिया गया, ताकि युवा आत्मनिर्भर बन सकें।

महात्मा गांधी ने भारतीय शिक्षा प्रणाली में नैतिक और व्यावसायिक शिक्षा को प्राथमिकता देने की वकालत की। उन्होंने 'नई तालीम' (बुनियादी शिक्षा) की अवधारणा प्रस्तुत की, जो व्यावसायिक शिक्षा और नैतिक मूल्यों को शिक्षा प्रणाली में समाहित करने पर आधारित थी। गांधीजी का मानना था कि शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसे छात्रों को आत्मनिर्भर बनाना चाहिए। उनकी इस शिक्षा प्रणाली में हस्तशिल्प, कृषि, कताई–बुनाई और अन्य व्यावसायिक कार्यों को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया गया, जिससे विद्यार्थियों को व्यावहारिक कौशल के साथ–साथ आत्मनिर्भरता की सीख भी मिले। गांधी जी की इस शिक्षा नीति का मुख्य उद्देश्य समाज में आर्थिक और सामाजिक समानता स्थापित करना था। हालांकि, यह शिक्षा प्रणाली व्यापक स्तर पर लागू नहीं हो सकी, फिर भी इसने भारतीय शिक्षा प्रणाली पर गहरा प्रभाव डाला। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारत सरकार ने शिक्षा प्रणाली को अधिक समावेशी और आधुनिक बनाने के लिए कई सुधार किए, जिससे शिक्षा का प्रसार व्यापक स्तर पर हो सका। 20वीं सदी में हुए इन परिवर्तनों ने भारत में शिक्षा के स्वरूप को पूरी तरह से बदल दिया और इसे स्वतंत्रता आंदोलन और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का एक महत्वपूर्ण आधार बना दिया।[8]

रवींद्रनाथ टैगोर भारतीय शिक्षा प्रणाली में स्वदेशी विचारधारा को स्थापित करने के प्रमुख समर्थकों में से एक थे। उन्होंने पश्चिमी शिक्षा प्रणाली की नकल करने के बजाय एक ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करने पर बल दिया जो भारतीय संस्कृति, परंपरा और प्रकृति के साथ समन्वय स्थापित करे। इसी सोच के तहत उन्होंने 1921 में शांतिनिकेतन में विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना की। यह विश्वविद्यालय भारतीय और वैश्विक संस्कृति के ज्ञान का संगम था, जहाँ न केवल पारंपरिक गुरुकुल प्रणाली के तत्व मौजूद थे, बल्कि कला, संगीत, साहित्य और विज्ञान को भी समाहित किया गया था। टैगोर की शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य विद्यार्थियों को प्राकृतिक परिवेश में रहकर सीखने की सुविधा प्रदान करना था, जिससे वे रचनात्मकता और मौलिक सोच विकसित कर सकें। उनका मानना था कि शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि यह छात्रों को स्वतंत्र सोचने और समाज में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए प्रेरित करे। टैगोर ने औपचारिक परीक्षा प्रणाली की कठोरता को नकारते हुए विद्यार्थियों को उनकी रुचि और प्रतिभा के अनुसार सीखने का अवसर प्रदान किया। उनकी शिक्षा प्रणाली में भारतीय परंपराओं, लोक कला, संगीत और कारीगरी को विशेष महत्व दिया गया, जिससे शिक्षा अधिक व्यावहारिक और आत्मनिर्भरता पर आधारित बन सके।[9]

1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, भारतीय सरकार ने शिक्षा प्रणाली में व्यापक सुधार की दिशा में कदम उठाए। संविधान के तहत शिक्षा को मौलिक अधिकारों में शामिल किया गया और 1950 में इसे नीति निर्देशक तत्वों के तहत सभी नागरिकों के लिए अनिवार्य बनाने की योजना बनाई गई। भारत सरकार ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) की स्थापना की, जिसने उच्च शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1968 में पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) लागू की गई, जिसमें शिक्षा प्रणाली के विस्तार, तकनीकी शिक्षा के विकास और सामाजिक समानता पर जोर दिया गया। इसके बाद, 1986 में दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाई गई, जिसमें प्राथमिक शिक्षा को सुदृढ़ करने, महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने और अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों के लिए विशेष प्रावधान किए गए। 1990 के दशक में उदारीकरण के साथ निजी शिक्षा संस्थानों की संख्या बढ़ी और उच्च शिक्षा तक पहुंच आसान हुई। 2009 में शिक्षा का अधिकार (RTE) अधिनियम पारित हुआ,

जिससे 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा सुनिश्चित की गई। स्वतंत्रता के बाद से अब तक भारतीय शिक्षा प्रणाली में कई बदलाव आए हैं, जिन्होंने समाज के हर वर्ग को शिक्षित और सशक्त बनाने में योगदान दिया है।

सामाजिक प्रभावशीलता (Social Effectiveness of Educational Changes)

भारत में 19वीं और 20वीं सदी के दौरान शिक्षा प्रणाली में हुए परिवर्तनों ने समाज पर व्यापक प्रभाव डाला। इन बदलावों ने भारतीय समाज की संरचना को प्रभावित किया और सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए। शिक्षा के प्रसार से समाज में साक्षरता दर बढ़ी, महिलाओं का सशक्तिकरण हुआ, जाति एवं वर्ग व्यवस्था में परिवर्तन आया, और वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा मिला। हालाँकि, शिक्षा के विकास के बावजूद समाज में असमानताएँ बनी रहीं, जिनका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है।[10] 19वीं और 20वीं सदी में शिक्षा प्रणाली में हुए परिवर्तनों का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव साक्षरता दर में वृद्धि के रूप में देखा गया। ब्रिटिश शासन के दौरान आधुनिक विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई, जिससे भारत में शिक्षा का प्रसार होने लगा। स्वतंत्रता के बाद सरकार ने साक्षरता दर बढ़ाने के लिए कई प्रयास किए, जिनमें राष्ट्रीय साक्षरता मिशन और प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने जैसी योजनाएँ शामिल थीं।

साक्षरता दर में वृद्धि का सीधा प्रभाव समाज में जागरूकता बढ़ने के रूप में देखा गया। लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुए, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अधिक भागीदारी करने लगे, और समाज में सुधार लाने के लिए आंदोलन खड़े किए। स्वतंत्रता संग्राम में शिक्षित भारतीयों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और शिक्षा के माध्यम से ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनजागरण किया। आधुनिक शिक्षा ने भारतीय समाज में वैज्ञानिक और तार्किक सोच को बढ़ावा दिया, जिससे परंपरागत रूढ़ियों और अंधविश्वासों को चुनौती दी गई। 19वीं सदी तक महिलाओं की शिक्षा पर समाज में अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। शिक्षा का अवसर केवल पुरुषों तक सीमित था, और महिलाओं को घरेलू कार्यों तक सीमित रखा जाता था। लेकिन 19वीं सदी में समाज सुधारकों जैसे राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर और ज्योतिबा फुले ने महिलाओं की शिक्षा की आवश्यकता को समझा और इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए। अंग्रेजों ने भी महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विद्यालय स्थापित किए, जिससे धीरे–धीरे समाज में महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर मिलने लगे।[11]

20वीं सदी में, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाओं की भूमिका बढ़ने लगी। महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलनों में भाग लेना शुरू किया, और शिक्षा ने उन्हें आत्मनिर्भर बनने में सहायता की। स्वतंत्रता के बाद, सरकार ने महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ शुरू कीं, जिनमें बेटी बचाओ–बेटी पढ़ाओ योजना और महिला साक्षरता मिशन जैसी पहलें शामिल हैं। महिलाओं की शिक्षा में सुधार के कारण वे विभिन्न क्षेत्रों में अपनी पहचान बना सकीं और राजनीति, विज्ञान, प्रशासन, चिकित्सा तथा अन्य क्षेत्रों में योगदान देने लगीं।

महिलाओं की शिक्षा ने उनके सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शिक्षित महिलाओं ने न केवल आर्थिक रूप से स्वतंत्रता हासिल की, बल्कि समाज में अपनी स्थिति भी मजबूत की। महिलाओं के शिक्षित होने से बाल विवाह, दहेज प्रथा और लैंगिक भेदभाव जैसी कुप्रथाओं में कमी आई और समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा मिला।

शिक्षा प्रणाली में सुधार हुए, लेकिन जाति और वर्ग के आधार पर शिक्षा में असमानता बनी रही। 19वीं सदी में शिक्षा मुख्यतः उच्च जाति और आर्थिक रूप से संपन्न वर्ग तक सीमित थी। निचली जातियों और समाज के वंचित वर्गों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ा। ज्योतिबा फुले और बाबा साहेब अंबेडकर जैसे समाज सुधारकों ने दलितों और पिछड़े वर्गों की शिक्षा के लिए प्रयास किए, जिससे समाज के वंचित वर्गों के लिए शिक्षा के अवसर बढ़े।[12] स्वतंत्रता के बाद सरकार ने शिक्षा में समानता लाने के लिए आरक्षण नीति लागू की, जिससे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। प्राथमिक शिक्षा को सभी के लिए अनिवार्य और निःशुल्क बनाया गया, जिससे

गरीब और वंचित वर्गों के बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। हालाँकि, आज भी ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षा के स्तर में अंतर बना हुआ है, और आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।[13]

19वीं सदी तक भारतीय समाज में शिक्षा मुख्यतः धर्म और परंपराओं पर आधारित थी। लेकिन आधुनिक शिक्षा के प्रसार से वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हुआ और समाज में तर्कसंगत सोच को बढ़ावा मिला। अंग्रेजों द्वारा स्थापित विश्वविद्यालयों में विज्ञान, गणित, चिकित्सा और इंजीनियरिंग जैसे विषयों को पढ़ाया जाने लगा, जिससे भारतीय समाज में वैज्ञानिक सोच विकसित हुई। स्वतंत्रता के बाद, भारत सरकार ने वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न संस्थानों की स्थापना की। 1951 में आईआईटी (IIT) जैसे प्रतिष्ठित संस्थानों की स्थापना की गई, जिससे भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास हुआ। चिकित्सा, अंतरिक्ष अनुसंधान और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में भारत ने महत्वपूर्ण प्रगति की, जिसका श्रेय आधुनिक शिक्षा प्रणाली को जाता है।[14] शिक्षा के प्रसार से समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हुआ, जिससे अंधविश्वास, रूढ़िवादिता और धार्मिक कट्टरता में कमी आई। लोग स्वास्थ्य, स्वच्छता और पर्यावरण से संबंधित विषयों पर अधिक जागरूक हुए। शिक्षा ने लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत किया और नागरिकों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेत किया।[15]

निष्कर्ष (Conclusion)

19वीं और 20वीं सदी में भारतीय शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण बदलाव हुए, जिन्होंने समाज की संरचना और विकास को प्रभावित किया। 19वीं सदी में पारंपरिक गुरुकुल और मदरसा प्रणाली के स्थान पर औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा मिला, जिससे अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार हुआ। मैकॉले की शिक्षा नीति ने आधुनिक विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की नींव रखी, जिससे एक नया शिक्षित वर्ग उभरा। 20वीं सदी में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन ने शिक्षा को भारतीय संस्कृति और मूल्यों से जोड़ने का प्रयास किया। स्वतंत्रता के बाद, सरकार ने शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए अनेक सुधार किए, जिनमें राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) की स्थापना और शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE) जैसे कदम शामिल हैं। इन परिवर्तनों के सामाजिक प्रभाव व्यापक रूप से देखे गए। साक्षरता दर में वृद्धि के साथ समाज में जागरूकता बढ़ी, महिलाओं की शिक्षा से उनका सशक्तिकरण हुआ, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा मिला। हालांकि, शिक्षा प्रणाली में जाति, वर्ग और आर्थिक असमानता जैसी चुनौतियाँ अब भी बनी हुई हैं, जो पूर्ण साक्षरता और समावेशी शिक्षा के मार्ग में बाधक हैं। भविष्य में शिक्षा प्रणाली को अधिक समावेशी और व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता है। डिजिटल शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण और तकनीकी नवाचारों को बढ़ावा देकर शिक्षा को अधिक रोजगारोन्मुखी बनाया जा सकता है। साथ ही, ग्रामीण और वंचित समुदायों के लिए शिक्षा की बेहतर उपलब्धता सुनिश्चित करनी होगी, ताकि सामाजिक समानता को बढ़ावा मिल सके। एक प्रभावी और समावेशी शिक्षा प्रणाली ही भारत को एक विकसित और आत्मनिर्भर राष्ट्र बनाने में सहायक होगी।

संदर्भ सूची :–

1. अल्तेकर, ए. एस. (1944) ''भारतीय शिक्षा का इतिहास'' बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
2. मुखर्जी, एस. एन. (1964) ''भारतीय शिक्षा और उसके समस्याएँ'' लाइट एंड लाइफ पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
3. ममोरिया, सी. बी. (1965) ''भारतीय शिक्षा का समाजशास्त्र'' किताब महल, इलाहाबाद।
4. अग्रवाल, जे. सी. (2001) ''भारतीय शिक्षा : अतीत, वर्तमान और भविष्य'' वपों पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. शर्मा, आर. एन. (1997) ''भारतीय शिक्षा का विकास'' अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
6. दास, के. बी. (1982) ''भारत में शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन'' स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
7. सिंह, बी. पी. (2005) ''भारत में शिक्षा नीति और सुधार'' नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
8. राव, वी. के. (2010) ''भारतीय शिक्षा का सामाजिक दृष्टिकोण'' एस. चंद पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
9. मित्तल, एस. सी. (1996) ''आधुनिक भारत में शिक्षा प्रणाली'' शारदा पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
10. त्रिपाठी, आर. पी. (2007) ''भारतीय शिक्षाः औपनिवेशिक काल से वर्तमान तक'' पियर्सन एजुकेशन, नई दिल्ली।
11. कुमार, ए. (2012) ''शिक्षा और समाज भारत में परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में'' ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
12. चटर्जी, एस. (1988) ''भारत में उच्च शिक्षा का इतिहास'' मैकमिलन पब्लिशर्स, कोलकाता।
13. गुप्ता, पी. एन. (2003) ''भारतीय शिक्षा नीति का ऐतिहासिक विश्लेषण'' डीप एंड डीप पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
14. वरुण, के. एल. (2015) ''भारतीय शिक्षा और समाज में परिवर्तन'' सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
15. श्रीवास्तव, एस. (2018) ''भारतीय शिक्षा प्रणाली और सामाजिक न्याय'' यूनिवर्सल पब्लिशर्स, मुंबई।